(३) नाटक की संक्षिप्त-रूपरेखा

किसी भी नाटक के वास्तविक स्वरूप को समझने के लिए आवश्यक है

अपश्यती वत्समिवेन्दुबिम्बं तच्छर्वरी गौरिव हुंकरोति ॥१॥

उपोढरागेण विलोलतारकं तथा गृहीतं शशिना निशामुखम् ।
यथा समस्तं तिमिरांशुकं तया पुरोऽपि रागाद् गलितं न लक्षितम् ॥२॥

विलोक्य संगमे रागं पश्चिमाया विवस्वतः ।
कृतं कृष्णं मुखं प्राच्या न हि नार्यो विनेर्ष्यया ॥३॥

कि उसके मूल-तत्त्वों को ठीक समझ लिया जाय। नाट्यशास्त्र के मूलतत्त्वों का विस्तृत वर्णन धनंजय-कृत दशरूपक और विश्वनाथ-कृत साहित्यदर्पण (परिच्छेद ६) में है। यहाँ पर विद्यार्थियों के लाभार्थ उसकी संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की जाती है। विस्तृत विवेचन के लिए उक्त दोनों ग्रन्थों को देखें।

धनंजय के अनुसार नाटक में तीन तत्त्व होते हैं, जिनके आधार पर उनका विभाजन होता है—वस्तु, नेता और रस। 'वस्तु नेता रसस्तेषां भेदकः' (दशरूपक १—११)। इसमें वस्तु का वर्णन विशेष महत्त्व रखता है। वस्तु को कथा, कथावस्तु (Plot), इतिवृत्त आदि नाम से पुकारा जाता है।

वस्तु के दो भेद—वस्तु या कथावस्तु को दो भागों में[1] विभक्त किया गया है—(१) आधिकारिक, (२) प्रासंगिक। (१) आधिकारिक—वह कथा-वस्तु है जो मुख्य कथा होती है। अधिकार का अर्थ है—फल का स्वामित्व। अतः जो फल का स्वामी होता है अर्थात् नायक होता है, उससे सम्बद्ध कथानक आधिकारिक होता है। जैसे—रामायण में रामचन्द्र की कथा। (२) प्रासंगिक—वह कथा है जो गौणरूप से हो और मुख्य कथा का अंग हो। जैसे—रामायण में सुग्रीव या शबरी की कथा।[2] प्रासंगिक कथा के भी दो भेद हैं—(१) पताका, (२) प्रकरी। (१) पताका उस कथा को कहते हैं जो नाटक में दूर तक चलती जाती है। इसका नायक दूसरा व्यक्ति होता है। वह मुख्य नायक का साथी होता है और गुणों में उससे न्यून होता है। उसके कार्य का उद्देश्य कोई स्वतन्त्र फल नहीं होता है। जैसे—रामायण में सुग्रीव की कथा। (२) प्रकरी—छोटे-छोटे प्रसंगों या कथानकों को प्रकरी कहते हैं। जैसे—रामायण में शबरी आदि की कथाएँ।[3]

सम्पूर्ण कथावस्तु को तीन भागों में विभाजित किया गया है—(१) प्रख्यात—जो इतिहास आदि पर अवलम्बित हो। जैसे—शाकुन्तल की कथा महाभारत और पद्मपुराण पर अवलम्बित है। (२) उत्पाद्य—कवि द्वारा कल्पित होता है। जैसे—शूद्रक का मृच्छकटिक, भवभूति का मालतीमाधव। (३) मिश्र—

---

१. दशरूपक १—११, साहित्यदर्पण ६—४२।

२. दश० १—१२, सा० दर्पण ६—४२, ४३।

३. दश० १—१३, सा० द० ६—६७, ६८।

इसमें कुछ अंश इतिहास पर अवलम्बित होता है और अधिक अंश कविकल्पित होता है।[१]

पाँच अर्थप्रकृतियाँ—अर्थप्रकृतियाँ नाटकीय कथावस्तु के पाँच तत्त्व हैं। धनंजय और विश्वनाथ ने अर्थप्रकृति का अर्थ किया है—प्रयोजनसिद्धिहेतवः—जो प्रयोजन की सिद्धि में कारण हों। अर्थप्रकृतियाँ पाँच हैं—(१) बीज, (२) बिन्दु, (३) पताका (४) प्रकरी, (५) कार्य। (१) बीज—वह तत्त्व है जो वृक्ष के बीज की तरह प्रारम्भ में संक्षेप में निर्दिष्ट हो और आगे उसका ही अनेक प्रकार से विस्तार हो। यह नायक के मुख्य फल का प्रमुख कारण होता है।[२] (२) बिन्दु—अवान्तर कथा से मूल कथा के टूट जाने पर जो उसे जोड़ता है और आगे बढ़ाता है, उसे बिन्दु कहते हैं।[३] (३) पताका—वह प्रासंगिक कथा है जो मुख्य कथा के साथ दूर तक चली जाती है। (४) प्रकरी—वह प्रासंगिक कथा है जो मुख्य कथा के साथ थोड़ी ही दूर चलती है। (५) कार्य—कार्य का अर्थ फल है। जिस फल की प्राप्ति के लिए यत्न किया जाता है, जो साध्य होता है, वह कार्य है। जैसे—रामायण में रावण का वध। यह फल धर्म, अर्थ, काम में से कोई भी हो सकता है। इसको ही मुख्य प्रयोजन, लक्ष्य आदि कहते हैं।[४]

पाँच अवस्थाएँ—नाटक म जो कार्य प्रारम्भ किया जाता है उसकी प्रगति के विभिन्न विश्रामों को अवस्थाएँ कहते हैं। ये अवस्थाएँ उसकी गतिविधि को सूचित करती हैं। ये पाँच अवस्थाएँ हैं—(१) आरम्भ, (२) यत्न, (३) प्राप्त्याशा, (४) नियताप्ति, (५) फलागम[५]। (१) आरम्भ—मुख्य फल की सिद्धि के लिए नायक में जो उत्सुकता होती है, उसे आरम्भ कहते हैं।[६] (२) यत्न—फल की प्राप्ति के लिए नायक बड़े वेग से जो प्रयत्न करता है, उसे यत्न कहते हैं।[७] (३) प्राप्त्याशा—जब अनुकूल परिस्थितियों के कारण फल-

---

१. दश० १—१५, १६।
२. दश० १—१७, सा० द० ६–६५, ६६।
३. दश० १—१७, सा० द० ६–६६।
४. दश० १—१६, सा० द० ६–६९, ७०।
५. दश० १—१९, सा० द० ६–७०, ७१।
६. दश० १—२०, सा० द० ६—७१।
७. दश० १—२०, सा० द० ६–७२।

प्राप्ति की सम्भावना होती है और विघ्नों के कारण वह असम्भव दीखती है, उस सन्दिग्ध अवस्था को प्राप्त्याशा कहते हैं[1]। (४) नियताप्ति—जब विघ्नों के हट जाने के कारण फल की प्राप्ति निश्चित जान पड़ती है, उस अवस्था को नियताप्ति कहते हैं।[2] (५) फलागम—जब इष्ट फल की प्राप्ति हो जाती है, उस अवस्था को फलागम कहते हैं।[3]

पाँच सन्धियाँ—पाँचों अर्थप्रकृतियों को पाँचों अवस्थाओं से जो सम्बद्ध करती हैं, उन्हें सन्धियाँ कहते हैं। ये क्रमशः अर्थप्रकृति से अवस्था का सम्बन्ध करती हैं। सन्धियाँ पाँच हैं—(१) मुख, (२) प्रतिमुख, (३) गर्भ, (४) विमर्श, (५) उपसंहृति या निर्वहण।[4] (१) मुख—बीज और आरम्भ को मिलाकर मुख-सन्धि होती है। (२) प्रतिमुख—बिन्दु और यत्न को मिलाकर प्रतिमुख-सन्धि। (३) गर्भ—पताका और प्राप्त्याशा को मिलाकर गर्भ-सन्धि। जहाँ पताका न हो, वहाँ पर प्राप्त्याशा पर ही अवलम्बित रहती है। (४) विमर्श—प्रकरी और नियताप्ति को मिलाकर विमर्श-सन्धि। इसको ही विमर्ष और अवमर्श भी कहते हैं। जहाँ प्रकरी न हो वहाँ नियताप्ति पर ही निर्भर रहती है। (५) उपसंहृति—कार्य और फलागम को मिलाकर उपसंहृति-सन्धि। इसको ही निर्वहण-सन्धि भी कहते हैं। सन्धियों को कथा का स्थूल भाग कहा जा सकता है। इनके आधार पर ही नाटक का विभाजन किया जाता है।[5]

मुख-सन्धि में बीज की उत्पत्ति का वर्णन होता है। प्रतिमुख में बीज का कुछ प्रकट होना दिखाया जाता है। गर्भ में बीज का नष्ट होना और उसके लिए पुनः अन्वेषण का वर्णन होता है। विमर्श में गर्भ की अपेक्षा बीज अधिक प्रकट होता है, परन्तु शाप या क्रोध आदि के कारण उसमें विघ्न दिखाया जाता है। उपसंहृति में बिखरे हुए अर्थों को एकत्र किया जाता है और मुख्य फल का वर्णन होता है।[6]

अर्थप्रकृतियों आदि को निम्नलिखित रूप में रखकर सरलता से समझा जा

---

१. दश० १—२१, सा० द० ६—७२।
२. दश० १—२१, सा० द० ६—७३।
३. दश० १—२२, सा० द० ६—७३।
४. दश० १—२४, सा० द० ६—७५।
५. दश० १—२२, २३, सा० द० ६—७४।
६. दश० १—२४, ३०, ३६, ४३, ४८, सा० द० ६.७५—८१।

सकता है। प्रथम से प्रथम का, द्वितीय से द्वितीय का, इस प्रकार इनका सम्बन्ध है :—

अर्थप्रकृतियाँ	अवस्थाएँ	सन्धियाँ
१. बीज	आरम्भ	मुख
२. बिन्दु	यत्न	प्रतिमुख
३. पताका	प्राप्त्याशा	गर्भ
४. प्रकरी	नियताप्ति	विमर्श
५. कार्य	फलागम	उपसंहृति

कथावस्तु के दो विभाग—रंगमंच पर प्रदर्शित करने की दृष्टि से कथावस्तु के दो विभाग किए गए हैं—(१) सूच्य, (२) दृश्यश्रव्य। (१) सूच्य—कुछ वस्तुएँ नीरस होती हैं या रंगमंच पर उनका प्रदर्शन उचित नहीं है। ऐसी वस्तुओं की केवल सूचना दे दी जाती है। (२) दृश्यश्रव्य—जो वस्तुएँ वस्तुतः दर्शनीय और श्रवणीय हैं, उनका प्रदर्शन किया जाता है। सूच्य वस्तुओं को जिन उपायों से सूचित किया जाता है, उन्हें अर्थोपक्षेपक (अर्थ—वस्तु, उपक्षेपक-सूचक) कहते हैं। वे पाँच हैं—(१) विष्कम्भक—भूत और भावी घटनाओं की सूचना मध्यम श्रेणी के पात्रों के द्वारा दी जाती है। इनकी भाषा संस्कृत होती है। (२) प्रवेशक—भूत और भावी घटनाओं की सूचना निम्न श्रेणी के पात्रों के द्वारा दी जाती है। इनकी भाषा प्राकृत होती है। (३) चूलिका—पर्दे के पीछे बैठे हुए पात्रों के द्वारा वस्तु या घटना की सूचना देना। जैसे—नेपथ्य से कथन। (४) अंकास्य—अंक की समाप्ति के समय जाते हुए पात्रों के द्वारा अगले अंक में आने वाली घटना की सूचना देना। (५) अंकावतार—अंक की समाप्ति के पहले ही अगले अंक की कथावस्तु का प्रारम्भ करना।[1]

कथावस्तु के तीन विभाग—कथावस्तु को सुनाने या न सुनाने की दृष्टि से तीन विभाग किए गए हैं—(१) सर्वश्राव्य या प्रकाश—जो बात सबको सुनाने के योग्य है। इसको ही प्रकाश भी कहते हैं। (२) अश्राव्य या स्वगत—जो बात सुनाने के योग्य न हो और मन ही मन कही जाए। (३) नियतश्राव्य—जो बात कुछ लोगों को ही सुनानी होती है। इसके दो विभाग हैं—(क) जनान्तिक—हाथ की ओट करके दो पात्रों का वार्तालाप करना कि अन्य पात्र उसे न सुन पावें। (ख) अपवारित—मुँह फेर कर किसी दूसरे पात्र की गुप्त

१. दश० १.५६—६३, सा० द० ६.५४–६०।

बात कहना । इसके अतिरिक्त एक और भेद आकाशभाषित है । ऊपर मुँह करके स्वयं ही अकेले बात करना ।[१]

(४) कालिदास का जीवनवृत्त तथा उसकी कृतियाँ